International Journal of Sanskrit Research 2022; 8(3): 67-70

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2022; 8(3): 67-70
© 2022 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 18-02-2022
Accepted: 23-04-2022

डॉ० रंजना देवी
संस्कृत विभाग, जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू और कश्मीर, भारत

Corresponding Author:
डॉ० रंजना देवी
संस्कृत विभाग, जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू और कश्मीर, भारत

महाकाव्यों में वर्णित संस्कार एवं उनकी वर्तमानकालिक प्रासांगकिता

डॉ० रंजना देवी

सारांश
किसी पदार्थ में योग्यता को धारण कराने वाली क्रियाएं संस्कार कहलाती है। संस्कारों के सम्पादन के द्वारा ही कोई पदार्थ किसी कार्य के योग्य हो जाता है। हिन्दु समाज में संस्कार एक आवश्यक कृत माना गया है। संस्कारों के रूप में जिन विधि विधानों का अनुष्ठान किया जाता है, उनसे व्यक्ति की शारीरिक, मानसिक एवं वौद्धिक उन्नति होती है।

शब्द संकेत: संस्कार–परिष्करण कृत्य, चुडाकर्म संस्कार–बाल कटवाना, उपनयन संस्कार–शिक्षा दीक्षा आरंभ करवाना,समावर्तन संस्कार–गुरूकुल से विदाई लेने से पूर्व शिष्य का संस्कार, अन्त्येष्टि संस्कार–मृत व्यक्ति का अन्तिम–मण्डन (श्रृंगार) कर उसे अग्नि के लिए समर्पित कर देना।

प्रस्तावना
संस्कृत के समस्त काव्य को साहित्य शास्त्रियों ने दो भागों में विभक्त किया है श्रव्य एवं दृश्य। श्रव्य काव्य में महाकाव्य खण्डकाव्य एवं गीतिकाव्य आते हैं एवं दृश्य काव्य में सब प्रकार के रूपक। कोई भी काव्य मात्र अपनी बृहदाकृतिवश ही 'महा' संज्ञा से संपृक्त नही हो जाता। महाकाव्य की महत्ता स्वरूपजन्य होने के साथ–साथ गुणजन्य भी है। शास्त्रीय दृष्टि से महाकाव्य होते हुए भी उसे कुछ विशिष्ट लक्षणों में आबड़ होना आवश्यक है। जैसे कि आचार्य दण्डी ने महाकाव्य के निम्न लक्षण आपने काव्य–दर्श में प्रस्तुत किये है। यथा–

''सर्गबन्धों महाकाव्यमुच्यते तस्य लक्षणम्।''

विशाल संस्कृत साहित्य में जिन काव्य रत्नों की गणना सर्वोपरि है वे केवल छः है। इनमें से तीन लघुत्रयी एवं तीन बृहत्त्रयी के नाम से विख्यात है। कविकुलगुरू कालिदास के तीनों काव्य रघुवंश, कुमारसंभव एवं मेघदूत तीन लघुत्रयी के नाम से विख्यात हे। इसी प्रकार वहत्त्रयी के अन्तर्गत भारविकृत किरातार्जुनीय, माघकृत शिशुपालवध एवं श्री हर्षकृत नैषधीयचरित ये तीनों महाकाव्य के नाम से विख्यात है।कालिदास के रघुवंश एवं कुमारसम्भव तथा किरातार्जुनीय शिशुपालवध, नैवधीय इन काव्यों को पच्चमहाकाव्यों की कोटि में रखा गया है। प्रमुख पच्चमहाकाव्यों की कथावस्तु का आधार रामायण एवं महाभारत है। कवि कालिदासकृत रघुवंश एवं कुमारसम्भव महाकाव्यों के नाम वाल्मीकि कृत रामायण से ग्रहीत प्रतीत होते है यथा–

रघुवंशस्य चरितंचकार भगवानमुनि:[1]

तथा

कुमारसंभवैश्य धन्यः पुव्यस्तथैव च।
बृहत्त्रयी के तीनों काव्यों की कथा का आधार महाभारत है।

महाकाव्यों का सामान्य परिचय–
1) कुमार संभव महाकाव्यः इस महाकाव्य में हिमालय की पुत्री पार्वती द्वारा घोर तपस्या के फलस्वरूप वर रूप में शिव को प्राप्त करने एवं उनसे कार्तिकेय की प्राप्ति का वर्णन है।
2) रघुवंश महाकाव्यः रघुवंश महाकवि कालिदास की प्रतिमा का उत्कृष्ट निदर्शन है जिसके कथानक का आधार वाल्मीकि कृत रामायण है। यथा–

रघुवंशस्य चरितंकारभगवान्मुनिः।

इस महाकाव्य में 19 सर्ग है जिनमे इकत्तीस सूर्यवंशीय राजाओं का वर्णन है। इनमें दिलीप, रघु, अज, दशरथ एवं राम के जीवन का विशद एवं विस्तृत वर्ण है।

3) किरातार्जुनीयः इसमें कौरवों पर विजय प्राप्ति के लिए अर्जुन का हिमालय पर्वत पर जाकर तपस्या करने, किरात वेषधारी शिव से युद्ध एवं प्रसन्न शिव से पाशुपत अस्त्र की प्राप्ति का वर्णन है।
4) शिशुपालवधः इसमें देवर्षि नारद द्वारा शिशुपालवध के पूर्व जन्मों का विवरण देते हुए उसके अत्याचारों का उल्लेख, श्रीकृष्ण से उसके संहार की प्रार्थना युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में श्रीकृष्ण का इन्द्रप्रस्थ पहुँचना, शिशुपाल का अभद व्यवहार एवं क्रुद्ध श्रीकृष्ण द्वारा उसका वध वर्णित है।
5) नैषधीय चरितः इसमें नल दमयन्ती के प्रणय से लेकर परिणय (विवाह) तक का वर्णन है।

संस्कार शब्द की व्युत्पत्ति–
संस्कार शब्द सम् उपसर्गपूर्वक कृत् धातु से धञ् प्रत्यय से निष्पन्न होता है। जिसका अर्थ है–शोधन, परिष्करण कृत्य, पवित्रता आदि[2] अर्थात किसी पदार्थ में योग्यता को धारण कराने वाली क्रियाएं संस्कार कहलाती है। संस्कारों के सम्पादन के द्वारा ही कोई पदार्थ किसी कार्य के योग्य हो जाता है यथा–

''संस्कारों नाम स भवति यस्मिन जाते पदार्थो भवति योग्यः कस्यचिदर्थस्य।[3]

हिन्दु समाज में संस्कार एक आवश्यक कृत माना गया है। संस्कारों के रूप में जिन विधि विधानो का अनुष्ठान किया जाता है उनसे व्यक्ति की शारीरिक, मानसिक एवं वौद्धिक उन्नति होती है।

सोलह संस्कारो का वर्णन–
वैदिककाल में प्रमुख रूप से सोलह संस्कार प्रचलित थे। इनकी संस्था में विभिन्न युगों में परिवर्तन भी हुए। किन्तु सर्वाधिक प्रमुख एवं प्रसद्धि संस्कार सोलह ही माने जाते है जिनका वर्णन इस प्रकार से है–
(1) गर्भाधान (2) पुंसवन (3) सीमन्तोन्यन (4) जातकर्म (5) नामकरण (6) निष्क्रमण (7) अन्नप्राशन (8) चुडाकर्म (9) कर्णवेध (10) उपनयन (11) वेदारम्भ (12) समावर्तन (13) विवाह (14) वानप्रस्थ (15) सन्यास (16) अन्त्येष्टि।
महर्षि वेदव्यास स्मृति शास्त्र के अनुसार ये 16 संस्कार इस प्रकार से है यथाः–

गर्भाधानं पुंसवनं सीमंतो जातकर्म च।
नामक्रियानिष्क्रमणेअन्नाशनं वपनक्रियाः।
कर्णवंधो व्रतादेशो वेदारंभक्रिया विधि
केशांत स्नानमुद्वाहो विवाहाग्निपरिग्रहः।।
त्रैताडिन संग्रहश्चेति संस्काराः षोडश स्मृताः।[4]

महाकाव्यों में वर्णित षोडश संस्कारों का स्वरूप–
प्रमुख महाकाव्यों में विशेष रूप से संस्कारों का वर्णन मिलता है जिनका मुख्य रूप से विवेचन इस प्रकार से है–

1) गर्भाधान संस्कार–
हमारे शास्त्रों में मान्य सोलह संस्कारों में गर्भाधान पहला संस्कार है। गृहस्थ जीवन में प्रवेश के उपरान्त प्रथम कर्त्तव्य के रूप में इस संस्कार को मान्यता दी गई है। गृहस्थ जीवन का मुख्य उद्देश्य श्रेष्ठ सन्तोत्पत्ति है। उत्तम संतान की इच्छा रखने वाले माता–पिता को गर्भाधान से पूर्व अपने तन–मन की पवित्रता के लिए यह संस्कार करना अवश्यक है। इस संस्कर का मुख्य उद्देश्य यह है कि वह शिशु ब्रह्माजी की सृष्टि से वह अच्छी तरह परिचित होकर दीर्घकाल तक धर्म एवं मर्यादा की रक्षा करते हुए इस लोक का भोग करे।गर्भाधान संस्कार के लिए मनु, याज्ञवलक्य एवं धर्म–सूत्रों में निषेक शब्द का प्रयोग हुआ है।[5] यथा–

तथा निषेकादिश्मशानान्तो मन्त्रैर्यस्योदितो विधिः।
तथा निषेकाद्याः श्मशानान्तास्तेषां वैमन्त्रतः क्रियाः।

महाकवि कालिदास ने उक्त संस्कारो का बहुत कुछ संकेत किया है। रघुवंश के प्रथम सर्ग के प्रारम्भ में ही ''आजन्मशुद्धानाम'' एवं द्वितीय सर्ग में इसका निर्देश ''नरपतिकुलभृत्यै गर्भाधत्त राज्ञी''[6] के रूप में संकेत मिलता है। ''गर्भमाधत्तराज्ञी'' इसी संस्कार की ओर संकेत करता है। रघुवंश के दशम सर्ग में ''ताभिर्गर्भः प्रजाभूत्यै दध्रे देवांशसम्भण'' के रूप में भी इसका संकेत मिलता है।परन्तु किसी भी स्थान पर विधि क्रिया एवं कर्म आदि शब्दों के द्वारा इस संस्कार से सम्बद्ध किसी धार्मिक विधि के सम्पन्न किये जाने का निर्देश नहीं प्राप्त होता। उक्त संकेत के अतिरिक्त कालिदास ''निषेक'' शब्द का व्यवहार कुमारसंभव के इस ''योषित्सु तद्वीर्य निषेक भूमिः सैव क्षमेत्यात्म भुवोपादिष्टम।'' श्लोक में निषेक संस्कार की पुष्टि करते है।

2) पुंसवन संस्कार–
गर्भाधान संस्कार के पश्चात पुंसवन संस्कार किया जाता है। हिन्दु धर्म में संस्कार परम्परा के अतर्गत भावी माता–पिता को यह तथ्य समझाए जाते थे कि शारीरिक, मानसिक दृष्टि से परिपक्व हो जाने के वाद समाज को श्रेष्ठ तेजस्वी नई पीढ़ी देने के संकल्प के साथ ही संतान पैदा करने की पहल करें। उसके लिए अनुचित वातावरण भी वनाया जाता था। इस संस्कार को गर्भ के तीसरे माह में करने की सम्मति दी गई है।[7] कालिदास ने रघुवंश महाकाव्य में पुंसवन संस्कार की ओर संकेत करते हुए कहा है–

यथा क्रमं पुंसवनादिकाः क्रिया घृतेश्च धीरः सदृशीर्व्यधत्त सः। [8]
पुंसवन संस्कार पुत्र–प्राप्ति की इच्छा से किया जाता था। हिन्दु धर्म के अनुसार पितृ–ऋण से उतिर्ण करने वाला पुत्र होता है। पुत्र के इस महत्त्व को कालिदास ने रघुवंश में यह कहकर उसका प्रतिपादन किया है कि अपार धन वाले एवं इन्द्र के समान तेजस्वी राजा दशरथ के लिए पुत्र पितृऋण से छुटकारा दिलाने वाला एवं शोक के अन्धकार को दूर करने वाला प्रकाश है।राजा दिलीप ने भी पुत्र प्राप्ति की इच्छा से कामधेनु की पुत्री नन्दिनी गाय की सेवा की थी।[9]

3) जातकर्म संस्कारः–
बालक के जन्म लेने के पश्चात यह प्रथम संस्कार है। मनु के अनुसार नाभिच्छेदन (नार काटने) के पूर्व जातकर्म संस्कार किया जाता है। इसमें सुवर्ण घी तथा मधु का मन्त्रों से नवजात शिशु को प्राशन कराया जाता है।[10] रघुवंश में अनेक स्थलों पर इस संस्कार का वर्णन प्राप्त होता है यथा–

स जातकर्मव्यखिले तपस्विना तपेवनादेत्य पुरोधसा कृते
एवं
कुमारः कृत संस्कारास्ते धात्री स्तन्यपायिनः।।[11]

रघुवंश में कालिदास ने जातकर्म संस्कार का उल्लेख करते हुए यत्र–तत्र आदि शब्दों के प्रयोग द्वारा जन्म के पश्चात् नामकरण, निष्क्रमण एवं अन्न–प्राशन आदि का समावेश जातकर्म संस्कार में ही कर दिया है।[12] इस संस्कार के महत्त्व की ओर संकेत करते हुए कालिदास कहते हैं कि – वह राजा दिलीप का पुत्र तपस्वी पुरोहित वसिष्ठजी द्वारा तपोवन से आकार सविधि जात संस्कार

किए जाने पर खान से निकले और सान पर चढ़ाकर पालिश की गइ मणि के समान अधिक शोभित हुआ।[13] यथा–

''स जातकर्मव्यखिले तपस्विना..... ।''

यहाँ यह बात विशेष उल्लेखनीय है कि जातकर्म के अन्तर्गत स्तन्यपान भी कराया जाता था। स्तन प्रधान भी जातकर्म का एक अंग था। बृहत् उपनिषद के अनुसार ''तस्मात कुमारं जात घृतं वै वाग्रे प्रतिलेह्यन्ति स्तनं या अनुपधायन्ति।''[14] कालिदास ने रघुवंश में जातकर्म संस्कार अन्तर्गत स्तन्यपान का भी उल्लेख किया है।

4) नामकरण संस्कार–

नामकरण संस्कार जातकर्म सम्पन्न हो जाने के बाद किया जाता था। प्रायः पिता के द्वारा ही पुत्र का नामकरण किया जाता था। यह संस्कार कब किया जाए, इस विषय में आचार्यों में मतभेद हैं। मनु के अनुसार जन्म के दसवे या बारहवें दिन बालक का नामकरण संस्कार किया जाता है। उस दिन न होने पर शुभतिथि, मुहूर्त एवं गुणयुक्त नक्षत्र से नामकरण किया जाता है। यथा–

नामधेयं दशम्यां तु द्वादश्यां वाऽस्य कारयेत।
पुण्य तिथौ मुहूर्ते वा नक्षत्रे वा गुणन्विते।।[15]

कवि कालिदास ने रघुवंश में नामकरण संस्कार का उल्लेख न करके बालक के उत्पन्न होने के पश्चात पिता के द्वारा नवजात शिशु का नाम रखने का उल्लेख किया है। यथा–

ब्रह्मे मुहूर्ते किल तस्य देवी कुमारकल्पं सुषुवे कुमारम्।
अतः पिता ब्राह्मण एव नाम्ना तमात्मजन्मानमजं चकार।।[16]

वौधायन गृह्यासूत्रकार का आदेश है कि ऋषि, देवता अथवा पूर्वजों के नाम पर ही शिशु का नाम करखना चाहिए।[17] कवि कालिदास ने उक्त नियम का पालन करते हुए कहा है कि रघु ने ब्रह्मा के नाम से अपने पुत्र का नाम अज रखा। इसके अतिरिक्त प्रायः सार्थक नाम ही रखे जाते थे। पर्वत पुत्री पार्वती के पर्वत से उत्पन्न होने के कारण परिवार जनों ने उनका नाम पार्वती रखा। इसके पश्चात् माता द्वारा तपस्या करने से रोकी जाने के कारण वह लोक में उमा (ऐसा मत करो) नाम से विख्यात हुई यथा–

''तां पार्वतीत्याभिजनेन नामना बन्धुप्रियं बन्धुजनो जुहाव।''
''उमेति मात्रा तपसो निषिद्धा पश्चादुमाख्यां सुमुखी जगाम्।''[18]

5) चुडाकर्म अथवा चौल संस्कार–

चुडाकर्म संस्कार से तात्पर्य शिखा रखने से है। वस्तुतः इसका मुख्य कार्य बाल कटवाना ही है। इस संस्कार को मानने का समय मनु व याज्ञवल्क्य के मत में तृतीय वर्ष हे। परन्तु मनु प्रथम वर्ष में भी इस संस्कार को करने के लिए कह देते है। कालिदास ने रघवंश में इस संस्कार की ओर संकेत इस प्रकार से किया है कि चूडाकर्म हो जाने के वार रघु ने चचल लटों वाले एव समान आयु वाले मन्त्रियों के पुत्रों के साथ पहले वर्ण–माला लिखना–पढ़ना सीखा एवं फिर साहित्य का अध्ययन आरम्भ कर दिया।[19]

6) उपनयन संस्कारः–

प्राचीनकाल में जातक की शिक्षा दीक्षा आरंभ करवाने के लिए जो संस्कार किया जाता था, उसे उपनयन संस्कार कहा जाता था। शिक्षा मनुष्य के जीवन में निरंतर चलने वाली एक प्रक्रिया है। जिससे शिक्षार्थी का सर्वांगीण विकास होता है। आरम्भ में जातक को जब इस लायक समझा जाता था कि वह गुरूओं से ज्ञान अर्जित करने में सक्षम है तो उस अवस्था में उसका उपनयन संस्कार किया जाता था। उपनयन का शाब्दिक अर्थ ही सामीय है अर्थात उप–समीप एवं नी–ले जाना। अर्थात आचार्य के समीप बालक को ले जाने की क्रिया उपनयन संस्कार है।

''उपसमीपे आचार्यदीनां वटोर्नयनं प्रापणमुपनयनम।[20]

इस संस्कार के पूर्व वह द्विज बालक शूद्रवत् होता था। उसे वेदाध्ययन करने का अधिकार नही होता था। यह एक ऐसा संस्कार था जो विद्या सीखने वाले को गायत्री मन्त्र सिखाकर किया जाता था।महाकवि कालिदास ने रघुवंश में रघु के उपनयन संस्कार का वर्णन किया है। यद्यपि रघुवंश में उपनयन मनाने की विधि का उल्लेख नही किया गया है। परन्तु उपनयन संस्कार के पश्चात आचार्यो ने रघु को विधिपूर्वक विद्या पढ़ाना प्रारम्भ कर दिया। यथा–

अथोपनीतं विधिवद्विपश्चितो विनिन्युरेनं गुरवों गुरूप्रियम्।[21]

महाकवि भारवि ने भी किरातार्जुनीय में उपनयन संस्कार का वर्णन किया है। उपनयन संस्कार के बाद बालक कं ब्रह्मचर्य जीवन का आरम्भ होता था जिसमें ज्ञान प्राप्ति का एक मात्र साधन गुरू ही होता था। महाकाव्यो में गुरू को देवता के सदृश सम्मानयुक्त पद पर अधिष्ठित किया गया है। गुरू सूर्य के समान संसार को ज्ञान के प्रकाश से आलोकित अर्थात प्रकाशित करने वाला होता है।
श्री हर्ष नैषधीयचरित में उपनयन संस्कार के विषय में वर्णन करते हुए कहते है कि विद्याध्ययनार्थ शिष्य गुरू के समीप जाकर उनके चरणों की सेवा करते थे। इससे यह वात स्पष्ट हो जाती है कि कवि उपनयन संस्कार की ओर संकेत कर रहे है। योग्य शिष्य को सुशिक्षित बनाना गुरू का उत्तरदायित्व होता था एवं अच्छे शिष्य को दी गयी विद्या भी अशेचनीयं होती थी। सुपात्र शिष्य को विद्यादान करके गुरू निश्चिन्त हो जाता था एवं विषाद का अनुभव नहीं करता था।
उपनयन संस्कार में विद्या की समाप्ति पर शिष्य का अपनी योग्यतानुसार गुरूदक्षिणा देना अनिवार्य था। इसी तथ्य को कालिदास कुमारसम्भव में रखते हुए कहते है कि विद्या की समाप्ति के वाद शिष्य अपनी योग्यतानुसार गुरू को गुरूदक्षिणा भी देते थे।[22] रघुवंश में भी वर्णन मिलता है कि वरतस्तु के शिष्य कौत्स गुरूदक्षिणा की अभिलाषा से राजा रघु के पास पहुँचे।

7) समावर्तन संस्कार–

गुरूकुल से विदाई लेने से पूर्व शिष्य का समावर्तन संस्कार होता था। आचार्य मनु के अनुसार गुरू से आज्ञा प्राप्त कर द्विज अपनी गृह्योक्त विधि से स्नानकर आने पर समान वर्णवाली शुभ लक्षणों से युक्त कन्या के साथ विवाह करने का वर्णन है। यथा–

''गुरूणाऽनुमतः स्नात्वा समावृत्तो यथाविधि उद्वहेत द्विजो भार्यां सवर्णां लक्षणान्विताम्।''

इस संस्कार से पहले जातक का केशान्त संस्कार कराया जाता था एवं वाद में उसका स्नान कराया जाता था। रघुवंश महाकाव्य में कालिदास स्नान। समावर्तन संस्कार की और संकेत करते हुए कहते है कि वेदाध्ययन के पश्चात ब्रह्मचारी स्नान करता है। समावर्तन संस्कार के लिए जो जल एकत्रित किया जाता था वह सुगन्धित पदार्थो एवं औषधादि से युक्त होता था। यह स्नान विशेष मन्त्रोच्चारण के साथ करवाया जाता था। इस स्नान के बाद ब्रह्मचारी उन वस्तुओं (मेखला एवं दण्ड) का त्याग कर देता ाि। जिसे उस ब्रह्मचारी को यज्ञोपवीत के समय धारण कराया जाता था। स्नान किये हुए जातक को आचार्य ''स्नातक'' संज्ञा से अभिहित करने थे। अर्थात स्नान किये हुए व्यक्ति को ''स्नातक'' कहा जाता था।[23]

महाकवि श्री हर्ष ने समावर्तन संस्कार की ओर संकेत करते हुए अपने काव्य में ''स्नातक'' शब्द का प्रयोग किया है। स्नातक शब्द के द्वारा विद्या स्नातक, व्रत स्नातक एवं उभय (विद्याव्रत या वेदव्रत) स्नातको का कथन है। यथा–

''स्नातकं धातुकं जज्ञे जज्ञौ दान्तं कृतान्तवत्–।''

महाकवि कालिदास ने उक्त संस्कार का कहीं प्रत्यक्ष उल्लेख नहीं किया है, परन्तु उन्होंने ''स्नातक'' शब्द का उपयोग रघुवंश में यह कहते हुए किया है। सुवर्ण के सिंहासन पर स्थित उन इन्दुमती और अज दोनों के ऊपर स्नातक एवं बन्धुओं के साथ राजा भोज एवं पुत्रवती सौभाग्यवती स्त्रियों ने क्रमशः गीले अक्षत छोड़कर उन्हें आशीर्वाद दिया।[24]

8) विवाह संस्कार–

विवाह संस्कार का संकेत महाकाव्यों में अनेक स्थलों पर उल्लेख है। रघुवंश के सप्तम् सर्ग में अज–इन्दुमती के कुमारसम्भव के सप्तम सर्ग में शिव–पार्वती के एव नैषध में नल–दमयन्ती के विवाह संस्कारों का विस्तृत वर्णन पाया जाता है।

9) अन्तेयष्टि संस्कार–

अन्त्येष्टि अन्तिम संस्कार है। महाकाव्यों में इसका प्रायः ऐसे सामान्य रूप में वर्णन हुआ है कि अमुक मृत व्यक्ति का अन्तिम–मण्डन (श्रृंगार) कर उसे अग्नि के लिए समर्पित कर दिया जाता था। कालिदास रघुवंश में अन्तिम संस्कार के विषय में संकेत करते हुए मृत इन्दुमती के अन्तिम संस्कार का वर्णन करते हुए कहते हैं–

अथ तस्ये कथंचिदकंत्तः स्वजनस्तामपनीय सुन्दरीम्।

मृत्यु के पश्चात शव को पुष्प आदि से अलंकृत करने को ''अन्त्यमण्डन'' कहा जाता है।[25] इस प्रकार प्रमुख महाकाव्यों में जिन संस्कारों का वर्णन हुआ है वे मनुष्य के सर्वांगीण विकास के लिए अत्यन्त उपयोगी एवं आवश्यक थे। उपनयन जैसे संस्कार का उद्देश्य आश्यात्मिक एवं सांस्कृतिक था जिसको करने से वेदाध्ययन का माग्र खुलता था। नामकरण आदि संस्कारों का लौकिक महत्त्व था। गर्भापान, पुंसवन आदि संस्कार रहस्यात्मक एवं प्रतीकात्मक थे। इस प्रकार ये संस्कार मनुष्य की इहलौकिक एवं आध्यात्मिक पूर्वाता के लिए परमावश्यक थे।

षोडश संस्कारों की वर्तमानकालिक प्रासगिकता–

इन षोडश संस्कारों का आधुनिक युग में भी उतना ही महत्त्व है जितना वैदिक काल में था। आज भी हिन्दु धर्म अनुसार ये संस्कार मुख्य रूप से करवाया जाते हैं। कुछ एक को छोड़कर सभी संस्कार आज भी किये जाते हैं। जैसे जातकर्म संस्कार, नामकरण, निष्क्रमण, अन्नप्राशन, मुंडन/चुडाकर्म, वेदारन्भ, विवाह एवं अन्त्येष्टि आदि।

वैदिक काल में वर्णाश्रम के संस्कार के रूप में वर्ण के अन्तर्गत द्विजातियों अर्थात ब्राह्मण क्षत्रिय एवं वैश्य इन तीन वर्णों के लिए गर्भाधान से लेकर उपनयन तक के संस्कारों का अनुष्ठान अनिवार्य था परन्तु आधुनिक युग में ये अनुष्ठान सभी वर्णों के लिए अनिवार्य है।वैदिककाल में शुद्र को ये सब अधिकार प्राप्त नहीं थे कि वे भी वेदारन्भ, जैसे संस्कारों से सम्पन्न हो,अध्ययन अध्यापन करें। परन्तु आज के युग में सभी को पढ़ने लिखने का अधिकार है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य वर्ण के अतिरिक्त शुद्र के भीनामकरण, निष्क्रमण, अन्नप्राशन, मुंडन/चुडाकर्म, वेदारन्भ,उपनयन आदि संस्कार होते हैं। सभी विद्यार्जन करने के लिए स्कूलों में परिवेश करते हैं। इस प्रकार यह स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि संस्कारों की महत्ता आज भी उतनी ही आवश्यक है जितनी वैदिक काल में थी।

संदर्भ सूची

1. रामायण वालकाण्ड 3/9
2. अमर शब्द कोष – डॉ. उमा प्रसाद पाण्डे – पृष्ठ – 934
3. जैमिनीपूर्व मीमांसा शबर भाष्य 3/1/3
4. व्यास स्मृति 1/13–15
5. क) मनुस्मृति 2/16, 2/26
   ख) याज्ञ. 2/10
6. रघुवंश 2/76
7. आश्वलायन गृ.सू. 1/13
8. रघुवंश 3/10
9. रघुवंश द्वितीय सर्ग
10. प्राङनाभिवर्धनात्पुसो जातकर्म विधीयते।
    मन्त्रवत्पाशनं चास्य हिरण्यमधुसर्पिषाम्।। मनु० 2/29
11. रधुवंश 3/18 पू., 10/78, 14/75, 15/31 उतरार्द्ध
12. वही 14/75, 10/78
13. रघुवंश 3/18
14. वृहत उपनिषद अध्याय 1, 5, 2
15. मनु. 2/30
16. रघुवंश 5/36 एवं 10/67
17. क) ऋष्यनूकं देवतानूंकं वा यथैवैषां पूर्वपुरूषाणां नामानि स्युः। बौधायन 2–1–28–21
    ख) ''यरास्य नामधेयं देवताश्रयं नक्षत्राश्रयं देवतायाश्च। प्रत्यक्षं प्रतिषिद्धम्।'' मानव गृ.सू. 1/28
18. कुमार सम्भव 1/26
19. स वृत्तचूलश्चलकाफचक्षकैरमात्यपुत्रैः सवयोभिरन्वितः। लियेर्ययावदग्रहणेन वाङमय नदीमुखेनेव समुद्रमाविशत।।रघुवंश 3/28
20. संस्कार प्रकाश पृ. – 334
21. रघुवंश 3/29
22. कुमारसम्भव 8/17
23. पारस्कर गृ.सू. 2/6
24. तौ स्नातकैर्वन्धुमता च राज्ञा पुरन्ध्रिभिश्च क्रमशः प्रयुक्तम् कन्याकुमारौ कनकासन स्यावार्द्राक्षितारोपणमन्वभूताम्।। रघुवंश 7/28
25. रघु. 8/31 एवं कुमार सम्भव 4/22